आदिवासी उत्पीड़न के दस्तावेज़

डॉ. सुरेश ए. *हिंदी विभाग, श्री. शंकरा कॉलेज कालडी, एर्णाकुलम, केरल*

आज आदिवासी जीवन वैश्वीकरण की नई साम्राज्यवादी शक्तियों का सबसे बड़ा शिकार है और इसके गिरफ्त से कोई भी आदिवासी सुरक्षित नहीं है। आज आदिवासी अपनी पहचान के सबसे कठिन दौर से गुजर रहा है। औद्योगिक क्रांति जहाँ अन्य समुदायों के लिए समृद्धि के नए द्वार खोल रही है, वहीं आदिवासियों के लिए विस्थापन और पलायन का दंश लेकर आई है। 1991 से देश में भूमंडलीकरण का चक्र शुरू हुआ। नव-उधारीकरण की बाढ़ आई। सरकार ने औद्योगिक घरानों के लिए आदिवासी अंचलों के दरवाजे मुक्तभाव से खोल दिया। तब से इन क्षेत्रों में आदिवासी सामजों का हाशियाकरण व दमनचक्र शुरू हूआ। आज हमारे देश के अधिकांश आदिवासी बाहुल्य जिलों में समाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रतिरोधों का दावानल फैला हुआ है।

रणेन्द्र को छब्बीस 26 वर्ष नौकरी के सिलसिले में चेरो, खरवार, मुंडा, उराँव, बिरहोड़, नगेशिया, विरिजिया, असुर आदि आदिवासी समुदायों के बीच रहने, घुलने-मिलने, सुख-दुख में भागीदार होने का अवसर मिला है। उन्होंने उनकी विशिष्ट संस्कृति-समाज पर वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के प्रभावों का गंभीरता से अध्ययन किया। इसका परिणाम है उनके दो उपन्यास - "ग्लोबल गाँव के देवता" और "गायब होता देश"। उनका पहला उपन्यास "ग्लोबल गाँव के देवता' झारखंड राज्य के कोयलबीघा के भौंरापाट में निवास करने वाली 'असुर' जनजाति की संघर्षगाथा को केंद्र में रखकर उनकी जीवन स्थिति की पूरी सच्चाई को उजागर करता है। भौंरापाट एक ऐसा इलाका जहाँ बॉक्साइट की माइनिंग सालों से लगातार हो रही। इस उपन्यास आदिवासियों के राजनीतिकरण की प्रक्रिया को भी प्रकट करता है। उपन्यास में रणेन्द्र यह प्रश्न उठाते हैं कि इन इलाकों के आदिवासियों को न तो उचित मुआवजा दिया गया, और न ही उनकी गरिमापूर्ण पुनर्वासन हुआ है।

उनका उपन्यास 'गायब होता देश' झारखंड के "मुंडा" आदिवासियों को केंद्र में रख कर लिखा गया है । पूंजीवादी आधुनिकता ने कैसे एक पूरे समुदाय को ही अदृश्य कर दिया है, यह इस उपन्यास में देखा जा सकता है। रणेन्द्र इस उपन्यास में पूंजीवादी विकास की दौड़ में अपनी जमीन और घरों से बेदखल हो रहे मुंडा आदिवासियों के संघर्ष और जीवन-संवेदना को विस्तार देते नजर आता है। यह उपन्यास मुंडा जाती के अतीत के माध्यम से वर्तमान और भविष्य को देखने का प्रयास करता है। रणेन्द्र ने उन बातों की ओर हमारा ध्यान खींचा है जो आज के झारखंड के "मुंडा" आदिवासी अनुभव कर रही हैं जैसे- पूंजीवादी विकास के साथ आदिवासयों का सबसे भयावह तथा लुटेरे किस्म के सामाजिक-आर्थिक शोषण- यहाँ किस तरह उनके अस्तित्व को मिटाने की साज़िश रची जा रही है, और उनके साथ पूंजीवादी समाज किस तरह का खेल खेल रहा है और व्यवस्था इसमें कैसे सांझीदार हो रही है।

"गायब होता देश" के आरंभ में रणेन्द्र एक स्वर्ग की बात करते हैं, जिसका नाम है "सोना लेकन दिसुम" मतलब सोने जैसा देश। इस स्वर्ग को नष्ट करने वाला राष्ट्र-राज्य है जो वैश्विक पूंजी से साथ हाथ

मिलाकर चल रहा है। पूंजीवादी विकास की दौड़ में शामिल इस सोने जैसे देश के साथ एक मानव समुदाय को घास की तरह चरते जा रहे हैं। उपन्यास में इस स्वर्ग का चित्रण यों किया गया है- "सोने के कणों से जगमगाती स्वर्णकिरण स्वर्णरेखा, हीरों की कौंध से चौंधियाती शंखनदी, सफेद हाथी श्यामचंद्र और सबसे बढ़कर हरे सोने, शाल-सखुआ के वन, यही था मुंडाओं का सोना लेकन दिसुम।"[1]

जैसा कि शीर्षक का नाम बता रहा है, ये मुंडा आदिवासियों का सोने जैसे देश हर कहीं गायब हो रहे हैं। रणेन्द्र ने इस उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था आदिवासी जनजाति पर हावी होकर उनकी संस्कृति, भाषा एवं सभ्यता को नष्ट कर रही है। इन आदिवासी इलाकों में देश के विलुप्त हो जाने की प्रक्रिया को रणेंद्र ने उपन्यास में इस तरह बताया है- "सरना-वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग-बुरु बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए, गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखेरने वाली, हीरों से भरी सारी नदियाँ जिनमें "इकिर बोंगा'- जल देवता का वास था, गायब हो गई मुंडाओं की बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गये. 'सोना लेकन दिसुम' गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।"[2] उपन्यास में इस वैश्वीकरण के दौर में मुंडा आदिवासियों की महिलाओं पर हो रहे अत्याचार को भी दर्शाया है।

आज हम जिस पूंजीवादी आधुनिकता की वकालत कर रहे हैं, उसकी कोरपोरेट, काला जादू के कारण आदिवासियों के जीवन को एक नरक में बदल रही है। यह उपन्यास की विषयवस्तु आदिवासी मुंडा समुदाय के असह्य शोषण, लूट, पीड़ा, विक्षोभ पर ही केंद्रित है- किस तरह मुंडा आदिवासी अपना देश "सोना लेकन दिसुम" विकास के नाम पर रियल एस्टेट द्वारा ग्लोबल भूमंडलीकृत पतन का शिकार है। इनकी ज़मीने विकास की भेंट चढ़ा दी गए, उनकी ज़मीनों पर कल-कारखाने, बड़े उद्योग, चमकदार मॉल बन रहे हैं, लेकिन उस जमीन के असली हकदार तो उसी की चमक में दफ़न हो रहे हैं।

आधुनिक युग के विकास कार्यों के चलते नष्ट होते आदिवासी प्रकृति और परिवेश को रणेन्द्र उपन्यास के शुरुआत में चित्रित करते हैं- "उसने बंदरगाह बनाने, रेल की पटरियाँ बिछाने, फर्नीचर बनाने, मकान बनाने के लिए अंधाधुंध कटाई शुरू की, मरांग-बुरु-बोंगा की छाती की हर अमूल्य निधि, धातु-अयस्क उसे आज ही, अभी ही चाहिए था.....वे दौड़ में अपनी परछाइयों से प्रतिद्वंद्विता कर रहे थे....।"[3] रणेन्द्र ने किस तरह देश के एक हिस्से के विकास कार्यों के लिए देश के दूसरे कोने से प्राकृतिक संसाधनों को खोदकर ले जाया जाता है को दिखाया है। और जिस देश के हिस्से से यह लिया जाता है, वहाँ के लोगों को न तो विकास का कोई लाभ मिलता है, न ही उनकी आने वाली पीढ़ियों के लिए विकास का कोई कार्यक्रम चलाया जाता है।

रणेन्द्र ने भूमंडलीकरण रूपी आंधी के विविध आयामों, खासकर आर्थिक आयाम को केंद्रीय स्थान दिया है। इस उपन्यास में वर्तमान राजनीति और प्रशासन की तस्वीर उकेरी गई है, जिसमें राजनीति का बाजारीकरण कर दिया गया है। आदिवासियों की ज़मीन हथियाने के लिए तमाम हथकंडे अपनाए जाते हैं- दमन से लेकर टी वी, लैपटोप और बाइकें देकर संघर्ष से दूर करने तक। नेता, अधिकारी और विशेषकर मीडिया भी इस संघर्ष में शामिल रहते हैं। इसी क्रम उपन्यास में अशोक पोद्दार, सविता पोद्दार, निरंजन राणा, विक्टर तिग्गा जैसे शोषकों के चेहरे भी सामने आते हैं, जो बदलती हुई परिस्थितियों का

1. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृ. 1
2. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृ. 1
3. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृ. 3

लाभ उठाते हैं और निरंतर ताकतवर होते चलते हैं। "गायब होता देश" में मीडिया के दोहरे स्वरूप का सही चित्रण किया गया है तथा सरकार और सरकारी तंत्र की कूटनीतियाँ भी उजागर हुई हैं। आदिवासी समुदाय के खिलाफ हो रहे अन्याय को मीडिया तोड़-मरोड़कर कर पेश कर रही है।

रणेन्द्र ने अपने उपन्यास में आदिवासी समुदायों पर चारों तरफ से बढ़ रहे दबावों और हमलों को दर्ज किया है और उसके प्रतिरोध की कथाभूमि चुनी है, जो भारत के भूमंडलीकरण के अभी के दौर का ज्वलंत अंतर्विरोध है। इस उपन्यास में कुछ आदिवासी पढ़े-लिखे मध्य वर्ग के है । वे आदिवासी समुदाय के प्रति हो रहे अन्यायपूर्ण बर्ताव को समझकर और इस अन्याय को लोगों के सामने लाने की कोशिश करते हैं। ये पूंजीवादी के खिलाफ संघर्ष और आंदोलन करने वालों में हैं - सोनामनी पहान, सोमेश्वर बाबा, अनुजा पहान, नीरज पालीटे, वीरेन, एतवा मुंडा जैसे पात्र जो किसी भी कीमत पर संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ना चाहते हैं। "सोनामनी दी-सोमेश्वर बाबा-नीरज दा ने तो राजधानी को जुलूस-धरना-प्रदर्शन से झकझोर के, नाथ के रख दिया। शहर को पहली बार समझ में आया कि स्लम सब में भी आदमिए रहता है।"[4]

ये पढ़े-लिखे आदिवासी वर्ग आदिवासी समाज में मौजूद विकल्प को पहचानते हैं और अपनी समाज-व्यवस्था को मजबूत बनाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी यह उपन्यास का सूत्र ही मुंडा समुदाय का संघर्ष है। मुंडा आदिवासी जीवन पर बाहरी समाज का प्रभाव और उसके बीच मुंडाओं के जीवन का द्वंद्व और संघर्ष, उत्पीड़न, इन सबके माध्यम से लेखक उपरोक्त सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। "आज हमारी ज़मीनें छीनी जा रही हैं। कल उन्हें बाँध के लिए ज़मीन चाहिए थी। फिर सेज के लिए ज़मीन छीनी। अब रियल एस्टेट के लिए।....हम क्या करें?...लेकिन हमारी परंपरा संघर्ष की, हमारे पूर्वज संघर्ष करने वाले। हमारा इतिहास, हमारा मिथक, हमारा दर्शन सब संघर्ष का।"[5]

उपन्यास के आरंभ में ही पत्रकार किशन विद्रोही की हत्या कर दी गई। उपन्यास अधिकतर किशन विद्रोही की डायरी के शक्ल में है। उसकी हत्या का कोई चश्मदीद गवाह न था, न कोई सबूत, जिससे कहा जा सके कि यह पत्रकार किशन विद्रोही की हत्या कर दी गई। बस खून में सना तीर और बिस्तर पर खून के गहरे धब्बे ही बचे हैं। पूंजीवादी ताकतें इस हत्या को छीपाकर रखना चाहती हैं। उपन्यसकार पत्रकार किशन विद्रोही की हत्या से यह बताते हुए प्रतीत होते हैं कि आदिवासियों का संघर्ष भी कुछ ऐसी ही है जहाँ जब कोई भी आदिवासी इन शक्तियों का विरोध करेगा, उसे भी दबाया जाता है। ऐसे सुनियोजित और व्यवस्थित तंत्र के समक्ष घुटने न टेककर खड़े होने के लिए बहुत शक्ति चाहिए।

"गायब होता देश' ने पूंजीवाद के इस नव-विकसित रूप अर्थात भूमंडलीकरण से उभरे संकट और समस्याओं की तरफ इशारा किया है। कैसे कॉरपोरेट की दुनिया तंत्र पर हावी है और विकास के नाम पर कैसे यहाँ के लोगों को विस्थापित कर रही है और यह प्रकिया बहुत तेज़ होती जा रही है। उपन्यास के इस यह कथन से आदिवासियों की व्यथा, बेबसी और लाचारी प्रकट होती है- "आदिवासी गाँवों-बस्तियों का उजाड़ना पहले से भी तेज़ी से हो रहा है? सोच-सोच के दिमाग फटा जा रहा है, राजेश दा! समझ में नहीं आ रहा कि क्या किया जाए.....क्या नयं किया जाए?""[6] रणेन्द्र अपने उपन्यास में यह सवाल उठाते हैं कि अपनी ज़मीन से बेदखल आदिवासी क्यों शहर के बहते नालों के पास स्लम्स में

4. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृ. 160
5. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृ. 242
6. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृ. 164

रहने को मजबूर है। झारखंड राज्य बनने के बाद भी, सौ साल पहले बने कानून भी कोई मदद नहीं कर पा रहा है। लेखक इन अंतरविरोधों को भी सामने लाता है।

आदिवासी समुदाय के लिए जमीन संरक्षण के सरकारी प्रावधान तो तमाम हैं, लेकिन इन कानून बनाने वालों से लेकर इस कानून को लागु करने वाले सभी लोग इन प्रावधानों की गलत व्याख्या करके आदिवासियों को नुकसान पहुँचाते हैं। राजनीति के अपराधीकरण का लाभ उठाकर पहले खनिज माफिया और फिर बिल्डर माफिया के सामने आदिवासी निरंतर अकेले पड़ते चले जाते हैं, और संघर्ष करते रहते हैं। रणेन्द्र उन हथकंडों को उजागर करते हैं, जिनको अपनाकर आदिवासियों को उनकी ज़मीनों से बेदखल किया जाता है। 'गायब होता देश' भ्रष्टाचार और अत्याचार के हथियारों से लैश औपनिवेशिक शासन का दमन और शोषण के अनगिनत रूपों से परिचय कराता है।

उपन्यास इस सत्य को हमारे समक्ष रखता है- जंगल से बेदखल होना आदिवासियों के लिए अपने जड़ से कट जाना है, उनकी संस्कृति का खत्म होना, फिर वह कहीं का नहीं रह जाता है। रणेन्द्र इस उपन्यास में एक ऐसे भारत का विचार सामने रखते हैं, जहाँ किसी भी भारतवासी को यह न लगे कि वह भारत माता का सौतेला बच्चा है। विकास की नई लकीर खींचने के लिए पुरानी लकीर को न मिटाया जाय। रणेन्द्र ने निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में बहुमूल्य खनिजों, अयस्कों, कोयले और रियल एस्टेट के लिए आदिवासियों की ज़मीनों की बड़ी कॉरपोरेटों द्वारा की गई खुली लूट का सवाल अपने उपन्यास के माध्यम से उठाया है। अत: रणेन्द्र का उपन्यास "गायब होता देश" आदिवासी इलाके का संकट और संघर्ष को ईमानदारी से उभारने में सफल हुआ है।

लेखक परिचय

डॉ. सुरेश ए.
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, श्री. शंकरा कॉलेज कालडी,
एर्णाकुलम, केरल 683574